International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में चण्डेश्वर कृत राजनीतिरत्नाकर की भूमिका : एक समीक्षात्मक अध्ययन

पूनम अहेरवार[1], डॉ. अनुज कुमार मिश्र[2]

[1](शोध छात्रा), विषय: राजनीति विज्ञान, पण्डित पृथी नाथ (पी जी) कॉलेज, कानपुर
[2](असिस्टेंट प्रोफेसर), राजनीति विज्ञान विभाग, पण्डित पृथी नाथ (पी जी) कॉलेज, कानपुर

शोध सारांश

मध्यकालीन मिथिला के राजनीतिज्ञ, धर्मवक्ता व कार्णाट वंश के राजा हरीसिंह के प्रधानामात्य चण्डेश्वर द्वारा रचित *राजनीतिरत्नाकर* मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक चिंतन का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भारतीय सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों को समझने का माध्यम है, साथ ही भारतीय राजनीति और शासन के मूलभूत सिद्धांतों को भी प्रस्तुत करता है। इस अध्ययन का उद्देश्य *राजनीतिरत्नाकर* के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक महत्व का विश्लेषण करना है। यह ग्रन्थ प्रशासनिक सिद्धांतों, राजा के कर्तव्यों, न्याय प्रणाली और सामाजिक संरचना पर प्रकाश डालता है। इस ग्रन्थ में राजनीति को धर्म और नैतिकता के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय परम्परा में राजनीति को केवल शक्ति का साधन न मानकर समाज कल्याण का माध्यम समझा गया है। चण्डेश्वर ने *राजनीतिरत्नाकर* के सोलह तरंगों (अध्यायों) में राज्य के विभिन्न घटकों जैसे राजा, अमात्य, मंत्रणा, प्राड्विवाक (प्रधान न्यायधीश), दण्ड, राजदूत, सैन्य व्यवस्था और न्याय प्रणाली पर विस्तार से चर्चा की है। इसमें राजा को एक आदर्श शासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, जो प्रजा के कल्याण के लिए अपने व्यक्तिगत हितों का त्याग करता है। इस ग्रन्थ में वर्णित नैतिक और सैद्धान्तिक राजनीति का विश्लेषण आधुनिक समय में भी प्रासंगिक है। ग्रन्थ की भाषा-शैली, श्लोक संरचना और विचारधारा से यह प्रमाणित होता है कि यह रचना तत्कालीन समाज की जटिलताओं को समझने और उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास है। यह अध्ययन *राजनीतिरत्नाकर* के ऐतिहासिक महत्व और भारतीय ज्ञान परम्परा में इसके योगदान को रेखांकित करता है। अतः *राजनीतिरत्नाकर* भारतीय ज्ञान परम्परा की एक अनमोल धरोहर है, जो शासन और राजनीति के मूलभूत सिद्धांतों को समझने और लागू करने में मार्गदर्शन प्रदान करता है। इसके अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता

है कि यह ग्रन्थ भारतीय राजनीति और संस्कृति की गहन समझ प्रदान करता है जिसे आज के सन्दर्भ में समझने की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द: मध्यकालीन, राजनीतिक चिंतन, चण्डेश्वर, राजनीतिरत्नाकर |

प्रस्तावना:

मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक चिंतन की पृष्ठभूमि

मध्यकालीन भारत में राजशास्त्र की परम्परा प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारधारा का विस्तार थी, लेकिन इस काल में सामाजिक, धार्मिक और प्रशासनिक बदलावों के कारण इसमें कई परिवर्तन हुए। यह काल भारतीय राजनीति और सत्ता संरचनाओं के विखण्डन, संक्रमण और यथासम्भव पुनर्गठन का समय था। इस युग में राजनीति का मूल स्वरूप धर्म, नैतिकता, प्रशासनिक संगठन और सैन्य नीति पर आधारित था। मध्यकालीन राजशास्त्र मुख्यतः हिन्दू धर्मशास्त्र, इस्लामिक आक्रमणों और परम्परागत भारतीय चिंतन से प्रभावित था। मध्यकालीन शासन प्रणाली पर इस्लामिक आक्रमणों के प्रभाव के सम्बन्ध में अरविन्द घोष का कथन गम्भीरतासम्पन्न है, "मुसलमानों के आक्रमण से पहले भारतीय राजतन्त्र किसी प्रकार भी एक व्यक्ति का स्वेच्छाचारी शासन या निरंकुश तानाशाही नहीं था।"[1] भाव यह कि है इस्लामिक आक्रमणों से पहले भारत की शासन प्रणाली राजा के व्यक्तिगत निर्णयों पर आधारित नहीं थी। भारतीय राजतंत्र मर्यादित और नियमों से संचालित था, जिसमें जनता और धर्म की भूमिका महत्वपूर्ण थी और भारत में निरंकुश तानाशाही जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। राजा धर्म, परम्परा और विद्वानों की सलाह के अनुसार शासन करता था। इस्लामिक आक्रमणों के बाद जो शासन प्रणाली भारत में स्थापित हुई वह भिन्न जीवनदृष्टि के सिद्धांतों को लागू करने पर बल देती है जिससे आक्रमणकारी विजेताओं ने प्रजा पर निरंकुश कठोरता को लागू किया। परंतु इस युग में भी भारतीय राजनीति पर लिखे गए ग्रन्थों ने न केवल प्रशासनिक सिद्धांतों को परिभाषित किया बल्कि समाज और राजनीति के आपसी सम्बन्धों पर भी प्रकाश डाला। ये तथ्य काशीप्रशाद जायसवाल की *हिन्दू पालिटी* में भी आया है, उन्होंने कहा है कि मुसलमानों के शासन-काल में जिस प्रकार हिन्दू धर्मशास्त्र का अध्ययन प्रचलित था, उसी प्रकार हिन्दू राजनीति का अध्ययन भी प्रचलित था।[2] इस शोध पत्र में मध्यकालीन भारत के प्रमुख राजनीतिक ग्रन्थों और उनके सिद्धांतों का विस्तार से अध्ययन किया गया है। विशेष रूप से *राजनीतिरत्नाकर* का संदर्भ लिया गया है, जो इस काल के एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। मध्यकालीन भारत में राजनीति और शासन प्रणाली पर कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए, जिनमें शास्त्रों, धर्मशास्त्रों और लोकनीति पर आधारित विचार प्रस्तुत किए गए हैं। इन ग्रन्थों में राजनीतिक दर्शन, प्रशासनिक नियम, युद्धनीति, कूटनीति और सामाजिक न्याय से जुड़े महत्वपूर्ण सिद्धांत मिलते हैं। मध्यकालीन राजशास्त्र की परम्परा के मुख्य सिद्धांतों के विश्लेषण लिए इस समय के कुछ ग्रन्थकारों और उनके ग्रन्थों का विश्लेषण आवश्यक है। अलटेकर ने मध्यकालीन राजशास्त्र के कई ग्रन्थों का विश्लेषण किया और उन ग्रन्थों को

प्राचीन राजशास्त्र परम्परा का संकलन मात्र कहा।[3] इस सम्बन्ध में डॉ. श्यामलाल पाण्डेय ने भी ऐसा ही विचार प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह टिप्पणी की कि *नीतिवाक्यामृत* के लेखन के पश्चात भारतीय राजशास्त्र के क्षेत्र में एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं लिखा गया है जो मौलिक हो, गहराई से विचार करने वाला और इस विषय के विकास में महत्वपूर्ण योगदान करने वाला हो।[4] डॉ. श्यामलाल पाण्डेय ने मध्यकाल में लिखे ग्रन्थों को निबन्ध साहित्य की श्रेणी में रखा है और ऐसे ग्रन्थों में उल्लेखनीय नाम है: गोपालकृत *राजनीतिकामधेनु*, लक्ष्मीधर भट्ट कृत *राजधर्मकाण्ड*, देवण भट्ट कृत *राजनीतिकाण्ड*, चण्डेश्वर कृत *राजनीतिरत्नाकर*, मित्र मिश्र कृत *राजनीति-प्रकाश*, नीलकण्ठ कृत *नीतिमयूख* तथा अनन्तदेव कृत *राजनीतिकौस्तुभ*।[5] मध्यकालीन राजशास्त्र के निबन्धकारों में गोपाल का नाम भी उल्लेखनीय है। डॉ. श्यामलाल पाण्डेय ने गोपाल को प्रथम निबन्धकार के रूप में वर्णित किया है, जिन्होंने धर्म-निबन्ध के अंतर्गत राजधर्म-निबन्ध की रचना की, जो उनकी प्रसिद्ध कृति *राजनीतिकामधेनु* है।[6] यह गोपाल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, क्योंकि उन्होंने राजनीतिक विषयों पर निबन्ध लेखन की परम्परा को शुरू किया और अपनी कृति में राजधर्म के सिद्धांतों और नीतियों को विस्तार से प्रस्तुत किया। कुछ विद्धानों का मत है कि *राजनीतिकामधेनु* ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है और यह गोपाल द्वारा लिखा गया नहीं है, लेकिन चण्डेश्वर ने अपने ग्रन्थ *राजनीतिरत्नाकर* में गोपाल के मतों और विचारों को उद्धृत किया है।[7] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि *राजनीतिकामधेनु* वास्तव में गोपाल द्वारा लिखा गया था। यह तथ्य गोपाल के लेखन की प्रामाणिकता और उनके योगदान को प्रमाणित करता है और यह भी दर्शाता है कि चण्डेश्वर ने गोपाल के विचारों को महत्व दिया और उन्हें अपने ग्रन्थ में शामिल किया। गोपाल की तरह लक्ष्मीधर भी मध्यकालीन निबन्धकार हुए। लक्ष्मीधर गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र के महासन्धिविग्रहिक भी रहे। इस व्यवहारिक ज्ञान का प्रयोग करते हुए *कृत्यकल्पतरु* नामक ग्रन्थ की रचना की जोकि चौदह काण्डों में विभाजित है, इन्हीं काण्डों में एक काण्ड राजधर्मकाण्ड है। इस काण्ड के नाम से ही ध्वनित हो रहा है कि यह राजधर्म पर केन्द्रित है। लक्ष्मीधर भट्ट ने राजधर्मकाण्ड में 21 अध्यायों का प्रतिपादन किया है। इसमें मुख्य रूप से राज्य के सप्तांग सिद्धांत के साथ षाड्गुण्यनीति और प्रजा के कल्याण के लिए उत्सवों का वर्णन किया है। इस ग्रन्थ में प्राचीन राजशास्त्र का पुनरावलोकन कुछ इस प्रकार किया गया है : शासक को न्यायप्रिय, धर्मपरायण और प्रजा की भलाई के लिए कार्य करने वाला होना चाहिए। राजा को सत्य, अहिंसा और सदाचार का पालन करना आवश्यक है। शासन की प्राथमिकता निष्पक्ष न्याय देना है। राजा को पक्षपात रहित होकर धर्म और नीति के अनुसार न्याय करना चाहिए। शासन का उद्देश्य प्रजा की सुरक्षा, सुख-समृद्धि और विकास सुनिश्चित करना है। कराधान न्यायसंगत होना चाहिए, जिससे राज्य की समृद्धि बनी रहे और प्रजा पर अनावश्यक बोझ न पड़े। शासक को दूरदर्शी, नीतिज्ञ और कूटनीतिक होना चाहिए, जिससे राज्य की स्थिरता बनी रहे।[8] मध्यकाल में ही तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में देवण भट्ट नाम के एक धर्म-निबन्धकार व याज्ञिक हुए। इन्होंने *स्मृति-चन्द्रिका* नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसके एक काण्ड का नाम व्यवहारकाण्ड है। इसी काण्ड में देवण भट्ट ने प्राचीन भारतीय

राजशास्त्र की परम्परा का पुनरावलोकन प्रस्तुत किया है। डॉ. श्यामलाल पाण्डेय के अनुसार देवण भट्ट रचित व्यवहारकाण्ड जो दक्षिण भारत में न्यायलयों में एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में उपयोग किया जाता रहा और इसका प्रभाव कई शताब्दियों तक बना रहा।[9] तेरहवीं शताब्दी के मध्य में ही चण्डेश्वर द्वारा रचित *राजनीतिरत्नाकर* भारतीय राजधर्म और प्रशासनिक सिद्धांतों पर आधारित है। यह ग्रन्थ 16 अध्यायों में विभाजित है, जिनमें शासन, न्याय, दण्ड नीति, गुप्तचर व्यवस्था, मंत्री परिषद और प्रशासनिक व्यवस्था जैसी विषयवस्तु का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ में राजा के आदर्श गुणों और उसके कर्तव्यों पर विशेष जोर दिया गया है। राजा को न्यायप्रिय, धर्मपरायण और नीतिनिपुण होना चाहिए। अमात्य (मंत्री) अध्याय में योग्य मंत्रियों के चयन और उनके कर्तव्यों की चर्चा की गई है। प्राडविवाक (न्यायधीश) अध्याय में न्याय प्रणाली और दण्ड विधान का वर्णन किया गया है, जिसमें अपराधों की रोकथाम और उचित दण्ड का महत्व बताया गया है। गुप्तचर अध्याय में राज्य की सुरक्षा के लिए जासूसी तंत्र की भूमिका समझाई गई है। सभा अध्याय में शासन में सभा (परिषद) की भूमिका और उसकी संरचना का उल्लेख किया गया है।[10] इस प्रकार यह ग्रन्थ भी कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* और *मनुस्मृति* जैसे प्राचीन शास्त्रों से प्रेरित है और तत्कालीन राजनीतिक दर्शन को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में प्रतिष्ठित निबन्धकार मित्र मिश्र का आविर्भाव हुआ, जिन्होंने *वीरमित्रोदय* नामक एक विस्तृत और गहन धर्म-निबन्ध की रचना की। यह ग्रन्थ कई खण्डों में विभाजित है, जिनमें ज्ञान के विविध विषयों को अत्यंत विस्तार और गहराई से समाहित किया गया है। इन खण्डों में से एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण राजनीति-प्रकाश है, जो राजधर्म और प्राचीन भारतीय राजशास्त्र पर केन्द्रित है। इस खण्ड में मित्र मिश्र ने प्राचीन भारतीय शासन प्रणाली, राज्य संचालन, नीतिशास्त्र और राजनीति के विभिन्न सिद्धांतों का विशद विश्लेषण किया है। उनका यह ग्रन्थ प्राचीन भारतीय राजनैतिक दर्शन को समझने के इच्छुक शोधकर्ताओं और विद्वानों के लिए एक अत्यंत महत्वपूर्ण, प्रामाणिक और उपयोगी स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाता है।[11] सत्रहवीं शताब्दी में ही राजशास्त्र परम्परा के अन्य महत्वपूर्ण निबन्धकार नीलकण्ठ हुए। उन्होंने अपने ग्रन्थ *नीतिमयूख* में न केवल राजशास्त्र की परम्परा का विस्तृत विश्लेषण किया, बल्कि इसे एक नई दृष्टि से देखने का प्रयास भी किया। इस ग्रन्थ में उन्होंने धर्मशास्त्र में प्रतिपादित विभिन्न विषयों को स्थान देते हुए, पूर्ववर्ती ग्रन्थों के उद्धरणों के माध्यम से उनके वास्तविक स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया। इसके साथ ही, उन्होंने देश, काल और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इन विषयों का गहन अध्ययन कर, राजशास्त्र की परम्परा को अधिक संगठित, प्रासंगिक और व्यावहारिक बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[12] सत्रहवीं शताब्दी के तीसरे चरण में भारतीय राजशास्त्र की परम्परा में एक और महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाश में आया, जिसे *राजनीतिकौस्तुभ* या *राजधर्मकौस्तुभ* के नाम से जाना जाता है। इस ग्रन्थ की रचना महाराष्ट्र के विद्वान और प्रमुख निबन्धकार अनन्त-देव ने की थी। यह ग्रन्थ न केवल तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं पर प्रकाश डालता है, बल्कि राजधर्म और शासन कला की गहराइयों को भी उजागर करता है। इसकी विषयवस्तु मुख्य रूप से *स्मृतियों*, *रामायण*, *महाभारत*,

पुराणों तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थों से संकलित की गई है, जिससे यह नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और राज्यशासन के सिद्धांतों का एक समृद्ध संकलन बन जाता है।[13] यह ग्रन्थ न केवल उस समय के शासकों और प्रशासकों के लिए उपयोगी था, बल्कि आज भी भारतीय राजनीतिक विचारधारा को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में माना जाता है। इस प्रकार मध्यकालीन राजशास्त्र प्राचीन भारतीय राजनीतिक परम्परा का ही एक विकसित रूप था, जिसमें नए सांस्कृतिक, धार्मिक और प्रशासनिक प्रभाव जुड़े। इस युग में प्रशासन, न्याय, कूटनीति और धर्मनीति का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है, जो आगे चलकर आधुनिक भारतीय प्रशासनिक ढांचे के लिए भी प्रेरणा बने। *राजनीतिरत्नाकर* जैसे ग्रन्थों ने इस परम्परा को संरक्षित रखा और राजनीतिक सिद्धांतों को परिभाषित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस काल में राजनीति केवल शक्ति और सत्ता तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह समाज के नैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों से गहराई से जुड़ी हुई थी।

मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में राजनीतिरत्नाकर

चण्डेश्वर कृत राजनीतिरत्नाकर का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

राजा: चण्डेश्वर ने सर्वप्रथम राजा का निरूपण किया है। राजा का पद राजधर्म में सबसे महत्वपूर्ण और उसकी भूमिका शासन, प्रशासन तथा सामाजिक व्यवस्था के संचालन में अनिवार्य होती है। चण्डेश्वर के मतानुसार राजा वही बन सकता है जो प्रजा की रक्षा करे। "च प्रजारक्षको राजेत्यर्थः"[14] । भाव यह है कि राजा होने के नाते उसका सबसे बड़ा उत्तरदायित्व अपनी प्रजा की रक्षा करना है, चाहे वह बाहरी आक्रमणों से हो या आन्तरिक संघर्षों से। चण्डेश्वर ने राजा को शासन व्यवस्था का अभिभावक माना है। राजा को अपने व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठकर राजधर्म का पालन करना चाहिए। यह राज्य और प्रजा के लिए आवश्यक है। पूर्ववर्ती भारतीय और पाश्चात्य राजनीतिक विचारकों की धारणाओं से विपरीत, चण्डेश्वर प्रजा को भी दिव्यत्व प्रदान करते हैं।[15] चण्डेश्वर के अनुसार राजा केवल सत्ता का प्रतीक नहीं है, बल्कि वह राज्य और प्रजा की समृद्धि, सुरक्षा और न्याय के लिए जिम्मेदार एक आदर्श शासक है। राजा का आचरण और कर्तव्य ही राज्य की प्रगति और स्थायित्व सुनिश्चित करता है।

अमात्य: चण्डेश्वर ने राजा के बाद अमात्य का निरूपण किया है। इस तरंग में अमात्य के कर्तव्यों, गुणों और राज्य की सफलता में उसकी भूमिका पर विस्तार से चर्चा की गई है। राजनीतिरत्नाकर में अमात्य के विषय में आया है कि राजा के लिए बिना अमात्य की सहायता के राज-कार्य करना सम्भव नहीं है "अमात्यं बिना राजकार्यं न निर्वहतीत्यतोडत्र"[16] । तात्पर्य यह है कि एक राजा के लिए अमात्य इसलिए महत्वपूर्ण होता है क्योंकि वह राज्य के प्रशासन, नीति निर्धारण और प्रजा के कल्याण में राजा का सहायक होता है। इसके अलावा वह न्याय व्यवस्था, वित्तीय प्रशासन और राजस्व नीति पर भी ध्यान देता है। और साथ ही राजा के निर्णयों का सही परिपेक्ष्य में मूल्यांकन करता है ताकि राज्य का प्रशासन सही दिशा में बढ़े। एक अच्छा मंत्री राज्य के लिए सद्भावना, विकास और शांति ला सकता है। इसके विपरीत एक बुरा

मंत्री राजा और राज्य को संकट में डाल सकता है। इसलिए राजा को हमेशा अपने मंत्री का चयन बुद्धिमानी से करना चाहिए और उसकी भूमिका को पूरी तरह से समझना चाहिए।

पुरोहित: राजनीतिरत्नाकर के तृतीय तरंग में पुरोहित का निरूपण किया गया है और इसमें पुरोहित के गुण, कर्तव्यों और महत्व का विस्तार से वर्णन किया गया है। राजा को ऐसे व्यक्ति को पुरोहित चुनना चाहिए जो वेद, शास्त्र, धर्म और नीति का गहन ज्ञान रखता हो। उसमें सत्य, धर्म और संयम का पालन करने की योग्यता होनी चाहिए। पुरोहित राजा और राज्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि पुरोहित यज्ञ और अनुष्ठान सम्पन्न करता है तथा राज्य की नीति और कार्यों को धर्मसम्मत रखने में भी सहायक होता है। इसलिए चण्डेश्वर ने पुरोहित को सब प्रकार के मंगलों का कारण कहा है "सर्वमंगलकारणमतोडत्र पुरोहितों"[17]। इस प्रकार पुरोहित की भूमिका राज्य के धार्मिक और सामाजिक संतुलन को बनाए रखने में अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

प्राड्विवाक (न्यायधीश): चतुर्थ तरंग में चण्डेश्वर ने प्राड्विवाक का निरूपण किया गया है। प्राड्विवाक प्राचीन भारतीय समाज में न्यायिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग था। यह व्यक्ति राजा के दरबार में न्यायिक मामलों का निपटारा करता था और इसके साथ यह व्यक्ति न्याय और नीति से सम्बन्धित मामलों में राजा को सलाह देता था। राजनीतिरत्नाकर के अनुसार प्राड्विवाक अदालत में दोनों पक्षों के तर्कों को सुनता है, विवादों के समाधान के लिए स्पष्ट और प्रभावशाली भाषा का उपयोग करता और धर्म के अनुसार निर्णय लेने में मदद करता है इसलिए उसे प्राड्विवाक कहते है।[18] प्राड्विवाक शास्त्रों, धर्मसूत्रों और न्यायशास्त्र का गहन ज्ञान रखने वाला होता था और विवादों में उचित समाधान प्रस्तुत करता था। उसे सत्य और धर्म, न्याय के सिद्धांतों का पालन करते हुए निष्पक्ष निर्णय लेना आना चाहिए।

सभ्य (सभासद): इस तरंग में चण्डेश्वर ने सभ्य का निरूपण किया है। उनके अनुसार न्यायिक प्रक्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने के लिए न्यायालय में सात, पाँच, या तीन सभ्यों का होना आवश्यक है। यहाँ सभ्य शब्द का उपयोग न्यायधीश के अर्थ में किया है और सभा का उल्लेख न्यायालय के अर्थ में किया है। चूंकि ये सभ्य न्यायिक कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है इसलिए उनके लिए कुछ विशेष योग्यताओं और गुणों का होना अनिवार्य है। चण्डेश्वर के विचारों के अनुसार, एक आदर्श सभ्य को वेद, वेदांग, धर्मशास्त्र, और लोक परम्पराओं के गहन ज्ञान में पारंगत होना चाहिए। इसके अलावा, उन्हें सत्य और धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए, क्रोध और लोभ जैसे दोषों से मुक्त होना चाहिए और शस्त्रों के ज्ञान में भी निपुण होना चाहिए। यह विशेषज्ञता और गुण उन्हें न्यायकार्य में एक निष्पक्ष, सक्षम और धर्मपरायण निर्णायक बनाने में मदद करेगी तथा न्यायपालिका में एक उच्च मानक स्थापित करेगी। चण्डेश्वर ने सभा के चार प्रमुख प्रकारों का भी उल्लेख किया है, जो न्यायिक प्रणाली के विभिन्न स्तरों और कार्यप्रणाली को दर्शाते हैं। ये प्रकार हैं: 1. प्रतिष्ठिता सभा (यह एक स्थायी और संगठित सभा होती है।), 2.

अप्रतिष्ठिता सभा (सभा जो अस्थायी होती है।), 3. सुमुद्रिता सभा (एक ऐसी न्यायिक सभा होती है जिसमें अध्यक्ष या मुख्य न्यायाधीश उपस्थित रहता है।), 4. शासिता सभा (राजा या शासक द्वारा अध्यक्षित न्यायिक सभा)। इसी तरह सभ्य के भी चार प्रकारों का उल्लेख चण्डेश्वर ने किया है, जो सभा के विभिन्न प्रकारों से जुड़े हैं। "प्रतिष्ठिताडप्रतिष्ठिता सुमुद्रिता शासिता सभा। चतुर्विधा सभा प्रोक्ता सभ्याच्श्रैव तथाविधा:॥ प्रतिष्ठिता पुरे ग्रामे नाना ग्रामेडप्रतिष्ठिता। मुद्रिताध्यसंयुक्ता राजयुक्ता च शासिता॥"[19] इस प्रकार चण्डेश्वर ने न्यायालय और न्यायाधीशों की संरचना को एक सुसंगठित और व्यवस्थित दृष्टिकोण से परिभाषित किया है।

दुर्ग/पुर: इस तरंग में दुर्ग का निरूपण किया गया है। दुर्ग एक संरचनात्मक और सामरिक संरचना है और यह राजा और प्रजा दोनों के लिए आश्रय स्थल और शक्ति का केंद्र होता है। एक प्रभावशाली और सुरक्षित राज्य के लिए दुर्ग का निर्माण और प्रबंधन अनिवार्य है। राजनीतिरत्नाकर में दुर्गों को भौगोलिक और संरचनात्मक आधार पर छ: प्रकारों में वर्गीकृत किया है: धनुदुर्ग (जो चारों ओर से मरुस्थल से घिरा हो), महीदुर्ग (पहाड़ी क्षेत्र में स्थित है और पत्थरों से घिरा हुआ), जलदुर्ग (ऐसे दुर्ग जिनके चारों ओर जल का घेरा होता है जैसे नदियाँ, झीलें या समुद्र।), नुदुर्ग (चारों दिशाओं में सेना द्वारा घेरा हुआ है।), वृक्षदुर्ग (चारों ओर से वृक्षों से घिरा हुआ है और जिसकी सुरक्षा पेड़ों की वजह से होती है।), गिरिदुर्ग (पहाड़ों और दुर्गम स्थानों पर बने दुर्ग।), धान्वदुर्ग (रेगिस्तान या सूखे क्षेत्रों में बने दुर्ग, जो दुश्मनों को थकाने और उनके संसाधनों को समाप्त करने में सहायक होते हैं।)[20] इस प्रकार दुर्ग न केवल सैन्य शक्ति का केंद्र होता है, बल्कि यह प्रशासन, खजाना और नागरिकों की सुरक्षा का भी मुख्य आधार होता है। राजनीतिरत्नाकर के सिद्धांत आज भी किलों और किलाबंदी की रणनीतियों के अध्ययन में महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

मंत्रणा: सप्तम तरंग में उन्होंने मंत्रणा का निरूपण किया है। मंत्रणा राज्य संचालन का एक अनिवार्य अंग है। मंत्रणा का उद्देश्य नीतिगत निर्णयों में संतुलन और विवेक सुनिश्चित करना है ताकि राज्य की समृद्धि और सुरक्षा बनी रहे। चण्डेश्वर का मंत्रणा के प्रति दृष्टिकोण प्राचीन भारतीय परम्परा और यथार्थवादी राजनीति का संतुलन है। चण्डेश्वर के अनुसार किसी भी राज्य की समृद्धि और सुरक्षा के लिए एक सुविचारित मंत्रणा प्रणाली आवश्यक है। मंत्रणा के लिए मंत्री बुद्धिमान, नीतिज्ञ और चरित्रवान होना चाहिए। उनकी सलाह से राजा को न्याय और धर्म का पालन सुनिश्चित करना चाहिए। चण्डेश्वर के मतानुसार राज्य का मूलमंत्र मंत्रणा पर आधारित है इसलिए मंत्रणा में गोपनीयता बनाए रखना अत्यावश्यक है। "मन्त्रमूलं यतो राज्यमतो मन्त्रं सुरक्षितम्।"[21] गोपनीयता भंग होने से राज्य को गम्भीर नुकसान हो सकता है। मंत्रणा में गोपनीयता सुनिश्चित करने के लिए राजा को अधिक मंत्रियों के साथ मंत्रणा नहीं चाहिए, उसे एक मंत्री से मंत्रणा करके फिर स्वयं के विवेक से निर्णय लेना चाहिए। इसके साथ ही मंत्रणा

ऐसे स्थान पर करना चाहिए जहाँ राजा व मंत्रियों के अलावा और किसी का आना जाना ना होता हो। राजा को अपनी मंत्रिपरिषद की राय का सम्मान करना चाहिए लेकिन अंतिम निर्णय उसकी स्वयं की विवेकशीलता पर आधारित होना चाहिए।

कोष: अष्टम तरंग में चण्डेश्वर ने कोष का निरूपण किया है। कोष राज्य की आधारशिला है और इसे उचित प्रबंधन के द्वारा सुदृढ़ बनाए रखना शासक का कर्तव्य है। कोष किसी भी राज्य या समाज की आर्थिक शक्ति और स्थायित्व का आधार होता है। प्राचीन भारतीय परम्परा में कोष केवल धन या सम्पत्ति का संग्रह मात्र नहीं था बल्कि यह राज्य की समृद्धि, प्रजा की कल्याणकारी योजनाओं और सुरक्षा के लिए आवश्यक संसाधनों का आधार है। चण्डेश्वर के मतानुसार कोष का संग्रह उचित और धर्मसम्मत माध्यम से होना चाहिए। कोष का व्यय धर्म और नीति के अनुसार होना चाहिए। कोष का उपयोग इस प्रकार करना चाहिए कि प्राकृतिक आपदाओं, महामारी, अकाल और युद्ध जैसे संकटों के समय प्रजा की सहायता और पुनर्वास के लिए उपयोग किया जा सके है। "धर्महेतोस्तथार्थाय भृत्यानां भरणाय च। आपदर्थच संरक्ष्य: कोष: कोषवता सदा"[22] । चण्डेश्वर का दृष्टिकोण व्यावहारिक और नैतिक सिद्धांतों का समन्वय है जो आधुनिक अर्थशास्त्र और प्रशासन के लिए भी प्रासंगिक है।

बल (सेना): इस तरंग में चण्डेश्वर ने बल का निरूपण किया है। बल या सेना किसी भी राज्य या देश की सुरक्षा और रक्षा के लिए महत्वपूर्ण अंग होती है। यह राज्य की शक्ति और सामर्थ्य को स्थापित करने में अहम भूमिका निभाती है। बल का मुख्य उद्देश्य देश की सीमाओं की रक्षा करना, आंतरिक सुरक्षा बनाए रखना और बाहरी आक्रमणों से बचाव करना है। यह राज्य की शांति, संप्रभुता और अखण्डता की रक्षा करती है। इस सम्बन्ध में चण्डेश्वर का मत है कि राजा को अपने राज्य और दुर्ग की रक्षा के लिए एक योग्य और अनुभवी सेनापति के नेतृत्व में एक संगठित और शक्तिशाली सेना का प्रबंध करना चाहिए। राजा को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वह छह प्रकार की सेनाओं का संगठन करके और अपने शत्रु की तीन प्रकार की शक्तियों - उत्साह शक्ति, प्रभु शक्ति और मित्र शक्ति का अच्छी तरह से विश्लेषण करके, शत्रु राज्य पर आक्रमण करने से पहले एक सोची-समझी और सुविचारित रणनीति बनाए।[23] इसके लिए राजा को अपनी सेना की क्षमताओं और कमजोरियों का मूल्यांकन करना चाहिए और अपने शत्रु की रणनीतियों और कमजोरियों को समझना चाहिए।

सेनानी (सेनापती): चण्डेश्वर ने इस तरंग में सेनापति की भूमिका, गुण, कर्तव्य और उनके महत्व के बारे में विस्तार से बताया है जो राज्य सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक है। प्राचीन काल में सेनापति एक ऐसा व्यक्ति होता था जो युद्ध के दौरान सेना का नेतृत्व करता था। इस तरंग में आया है कि हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेना जैसी सैन्य इकाइयों को दण्ड कहा जाता है जो सेनापति के नेतृत्व और नियंत्रण में कार्य करती हैं। सेनापति की योग्यताओं के सम्बन्ध में कहा गया है कि एक सेनापति में उत्कृष्ट गुणों

का समावेश होना चाहिए। उनमें वीरता, साहस और भिन्न युद्धकौशल की विशेषज्ञता होनी चाहिए जिससे वे अपने सैनिकों का नेतृत्व करने में सक्षम हों और स्वयं को वेतनभोगी समझना चाहिए। इसके साथ ही सैनिक और सेनापति का एक मुख्य कर्तव्य भी बताया गया है कि युद्ध के मैदान में पीठ दिखाकर नहीं भागना चाहिए। यदि वे ऐसा करते हैं तो उनके द्वारा अर्जित सभी पुण्य उनके स्वामी को प्राप्त हो जाते हैं और वे अपने स्वामी के सभी पापों का भार अपने सिर पर ले लेते हैं।[24]

राजदूत: इस तरंग में चण्डेश्वर ने राजदूत का निरूपण किया है। यह व्यक्ति राजा का प्रतिनिधित्व करता था और अन्य राज्यों के साथ कूटनीतिक सम्बम्ध स्थापित करने, सन्देश भेजने तथा शांति या युद्ध के सन्दर्भ में संवाद करने का काम करता था। चण्डेश्वर ने इस तरंग में राजदूत के कार्यों, योग्यताओं और उसके महत्व पर प्रकाश डाला है। चण्डेश्वर के मतानुसार राजदूत का स्थान इतना महत्वपूर्ण होता है कि यदि वह म्लेच्छ भी हो तो उसे किसी भी परिस्थिति में नहीं मारा जाना चाहिए। राजदूत को राजा का प्रतिनिधि माना जाता है और वह राजा के मुख के समान होता है। यहां तक कि यदि राजदूत के प्राण संकट में पड़ जाएं तो भी वह केवल वही बात कहता है जिसके लिए उसे राजा ने भेजा है।"दूतो म्लेच्छोडप्यवध्य: स्याद्राजा दूतमुखों यत:। उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु दूतो वदति नान्यथा॥"[25] चण्डेश्वर ने इस तरंग में राजदूतों के साथ गुप्तचरों का भी निरूपण किया है। गुप्तचरों का मुख्य कर्तव्य है कि राजा के शत्रु के बल और कमजोरी का पता लगा कर राजा को इस सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करे।

राजा के सामान्य कर्तव्य: बारहवीं तरंग में चण्डेश्वर ने राजा के सामान्य कर्तव्यों का निरूपण किया है। राजा के सामान्य कर्तव्यों को उन्होंने धर्मशास्त्र और राजधर्म के सिद्धांतों के आधार पर व्याख्यायित किया है। चण्डेश्वर के मतानुसार अपनी प्रजा की रक्षा करना एक राजा का प्राथमिक कर्तव्य है। "प्रजापालनमेव प्रथमत:"[26] युद्ध के मैदान को छोड़कर न भागना, ब्रह्मणों की सेवा करना भी राजा का कर्तव्य है। इसके साथ ही उसे अपनी आत्म रक्षा के प्रति भी सचेत रहना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि वह विजगीषु राजा की तरह सोचे और षाड्गुण्य नीति (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वेधीभाव व संश्रय) के उपायों का प्रयोग करके आत्मरक्षा को सुनिश्चित करे। यदि इन उपायों से भी आत्मरक्षा सुनिश्चित न हो सके तो राजा को युद्ध का सहारा लेना चाहिए। क्षत्रिय राजा के लिये युद्ध करना धर्मसम्मत माना गया है। इसके अलावा राजा को साम, दाम, दण्ड व भेद आदि में किसी एक या सभी का सहारा लेना चाहिए। राजा को बारह राजमण्डल में अपनी स्थिति के सम्बन्ध में भी विचार करते रहना चाहिए।

दण्ड: भारत में प्राचीन काल से ही दण्ड की अवधारणा का उल्लेख मिलता है। इसे समाज के नियमों और धर्म के पालन के लिए अनिवार्य माना गया। यह राजा, धर्मशास्त्र और समाज के नियमों से संचालित होता था। चण्डेश्वर के विचार में दण्ड समाज की सभी प्रजाओं पर नियंत्रण रखता है और उनकी रक्षा

करता है। यह हर समय सतर्क रहता है, यहां तक कि जब जीव सो रहे होते हैं, तब भी दण्ड सक्रिय रहता है। इसी कारण विद्वान दण्ड को धर्म के समान महत्वपूर्ण मानते हैं। सही सोच और समझ के साथ दिया गया दण्ड प्रजाओं में संतोष और शांति लाता है जबकि बिना सोच-विचार के दिया गया दण्ड सर्वनाश का कारण बनता है। दण्ड के दो प्रकार भी बताए गये है- शारीरिक और आर्थिक। अपराधी को दण्ड देते समय अपराध की प्रकृति, समय, स्थान, अपराधी की शक्ति, स्थिति, परिस्थितियां, किए गए कार्य और उसकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखना चाहिए।[27] इस प्रकार दण्ड न्याय का एक अभिन्न हिस्सा है। यह सुनिश्चित करता है कि समाज में कानून का पालन हो और लोग अनुशासित रहें।

राज्य का उत्तराधिकार: इस तरंग में चण्डेश्वर ने राजा द्वारा राज्य देने के लिए उत्तराधिकार के नियम का निरूपण किया है। यह उस प्रक्रिया या नियमों का समूह है जिसके माध्यम से किसी शासक की मृत्यु, त्याग या शासन छोड़ने के बाद नए शासक का चयन या अधिकार सुनिश्चित किया जाता है। यह किसी भी राज्य की स्थिरता और प्रशासन के सुचारू संचालन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस तरंग में कहा गया है कि राजा को चाहिए कि वह सभी प्रकार के दण्डों से प्राप्त धन ब्राह्मणों को दान में दे और राज्य का दायित्व अपने योग्य ज्येष्ठ पुत्र को सौंप दे। इसके बाद, राजा के लिए उचित है कि वह रणभूमि में वीरता के साथ युद्ध करते हुए अपना जीवन समर्पित करे। इसके अलावा यदि राजा वृद्ध हो जाए या किसी गम्भीर रोग से ग्रस्त हो, तो उसे नगरवासियों को आमंत्रित करके उनके परामर्श से राज्य का दायित्व अपने ज्येष्ठ पुत्र को सौंप देना चाहिए।[28] इस प्रकार हम देखते है कि राजा द्वारा राज्य का उत्तराधिकार ज्येष्ठ पुत्र को सौंपने की बात कहीं गई है और ज्येष्ठ पुत्र के रहते हुए छोटे पुत्र को राज्य का दायित्व नहीं दिया जाएगा।

पुरोहितादि द्वारा निर्धारित राज्य दान: पन्द्रवीं तरंग में चण्डेश्वर ने पुरोहित आदि द्वारा निर्धारित राज्य दान का निरूपण किया है। पुरोहितादि द्वारा राज्य दान प्राचीन भारतीय सन्दर्भ में उस प्रक्रिया को दर्शाता है जब राज्य या शासन किसी धार्मिक अधिकारी जैसे पुरोहित के निर्णय से किसी को सौंपा जाता था। इस सम्बन्ध में चण्डेश्वर का मत है कि यदि राज्य का दायित्व सौपें बिना ही राजा की मृत्यु हो जाती है तो ऐसी स्थिति में पुरोहित और मंत्री आदि राजा के ज्येष्ठ पुत्र को राज्य का उत्तराधिकार दे कर उसका राज्याभिषेक करें।[29] मंत्री और पुरोहित राजा के लौकिक और पारलौकिक कार्यों में उसके मुख्य प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं इसलिए राज्य दान का दायित्व उनपर सौपा गया। इसके साथ ही यह भी कहा गया कि ज्येष्ठ पुत्र का अभाव होने पर छोटे पुत्र और उसके अभाव में राजवंश से सम्बन्धित कोई योग्य व्यक्ति को राज्य का उत्तरदायित्व दिया जा सकता है।

राज्याभिषेक: सोलहवीं और अंतिम तरंग में चण्डेश्वर ने राज्याभिषेक का निरूपण किया है। इस तरंग में कहा गया है कि जब राजा का राज्य-कार्य में मन न लगे, तो उसे अपने ज्येष्ठ पुत्र को, जो शुभ लक्षणों

से सम्पन्न हो, युवराज के पद पर नियुक्त करना चाहिए।[30] यहाँ ज्येष्ठ पुत्र के संदर्भ में पुन: टिप्पणी की गई है। यदि ज्येष्ठ पुत्र उपलब्ध न हो, तो उसके ज्येष्ठ पुत्र को और उसके न होने पर क्रमशः कनिष्ठ पुत्र को या अन्य निकट सम्बन्धी को यह पद सौंपना चाहिए। यदि ऐसा भी सम्भव न हो, तो प्रजा और ब्राह्मणों की स्वीकृति से किसी अन्य निकटवर्ती योग्य व्यक्ति का अभिषेक करना उचित है। राज्याभिषेक की प्रक्रिया को प्राचीन धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में वर्णित नियमों और परम्पराओं के अनुसार सम्पन्न किया जाना चाहिए।

राजनीतिरत्नाकर का ऐतिहासिक महत्व एवं प्रासंगिकता

राजनीतिरत्नाकर मध्यकालीन भारत की प्रशासनिक व्यवस्था को समझने का महत्वपूर्ण स्रोत है और साथ ही यह समकालीन राजनीति के लिए भी प्रेरणा प्रदान करता है। आधुनिक प्रशासनिक तंत्र में सुशासन, पारदर्शिता और नीतिगत संहिताओं की जो चर्चा होती है, उसके मूल सिद्धांत हमें इस ग्रन्थ में भी देखने को मिलते हैं। यह ग्रन्थ हमें यह भी सिखाता है कि एक योग्य शासक को न केवल अपनी प्रजा के कल्याण की चिंता करनी चाहिए, बल्कि उसे नैतिकता, न्याय और लोकहित को भी ध्यान में रखना चाहिए। यह ग्रन्थ तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य का विश्लेषण करता है, बल्कि भारतीय राजनैतिक दर्शन और प्रशासनिक सिद्धांतों की एक समृद्ध परम्परा को भी दर्शाता है। यह ग्रन्थ भारतीय राजनीति और शासन-व्यवस्था के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालता है। यह ग्रन्थ राजधर्म और लोककल्याण की भावना को प्राथमिकता देता है, जो आज के लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली की आधारशिला कही जा सकती है। राजनीतिरत्नाकर इस दृष्टि से अपने विषय का अनुपम ग्रन्थ है।

भारत की राजनीतिक व्यवस्था ऐतिहासिक रूप से गहन विचार-विमर्श, विमर्शशील परम्परा और सामाजिक यथार्थ के समुचित समन्वय पर आधारित रही है। भारत की राजनीतिक परम्परा केवल सत्ता-परिवर्तन की नहीं, बल्कि धर्म, नीति और समाज के कल्याण के आदर्शों से अनुप्राणित रही है। भारतीय राजनीतिक चिन्तन में नैतिकता, न्याय और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को केंद्र में रखता है। इतिहास के अनेक मोड़ों पर जब सत्ता और समाज में विकृति उत्पन्न हुई, तब विचारशील ग्रन्थों ने पुनर्निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया। आज जब भारतीय राजनीतिक व्यवस्था नई चुनौतियों से जूझ रहा है: जैसे संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता में क्षरण, सत्ता का दुरुपयोग और नैतिकता का पतन, राजनीतिक विकेंद्रीकरण, सामाजिक न्याय, कानून का लचीला पालन, जातीय विविधता और आर्थिक असमानताएँ, लोकतांत्रिक विकृतियाँ मसलन, विधायिका और कार्यपालिका का अतिसंघर्ष, असंवेदनशील प्रशासन, जनता से सरकार की दूरी बढ़ना। ऐसे में हमारे प्राचीन राजनीतिक ग्रन्थों का पुनरावलोकन करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। इन्हीं ग्रन्थों में से एक राजनीतिरत्नाकर है जो एक महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में उभरता है। इस ग्रन्थ के माध्यम से हम भारतीय राज्य-चिंतन की गहराइयों में उतर सकते हैं और उसकी समकालीन प्रासंगिकता को पहचान सकते हैं। राजनीतिरत्नाकर की शिक्षाएँ एक नवीन दिशा देने की क्षमता रखती हैं। वर्तमान

परिप्रेक्ष्य में इसकी पुनर्रचना न केवल प्रासंगिक है, बल्कि आवश्यक भी है। राजनीतिरत्नाकर चाणक्य के अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति जैसे अन्य ग्रन्थों के विचारों को समाहित कर एक व्यावहारिक और नैतिक राजनीति का प्रतिपादन करता है। इस ग्रन्थ में राजनीतिक दायित्वों, शासक के गुणों, न्यायपालिका के स्वरूप और समाज व्यवस्था के नैतिक व विधिक पहलुओं का व्यापक विश्लेषण मिलता है। चण्डेश्वर ने तत्कालीन राजव्यवस्था की चुनौतियों का समाधान सुझाया और आदर्श राजधर्म की व्याख्या की।

राजनीतिरत्नाकर की प्रमुख शिक्षाएँ और उनकी वर्तमान प्रासंगिकता

राजनीतिरत्नाकर का मुख्य बल राजधर्म यानी राजा के नैतिक कर्तव्यों पर है। राजा का कर्तव्य मात्र शासन करना नहीं है, बल्कि उसे अपनी प्रजा के कल्याण के लिए धर्मपूर्वक सत्ता का प्रयोग करना चाहिए। आज जब राजनेताओं में नैतिक पतन स्पष्ट दिखता है तो राजनीतिरत्नाकर हमें यह सिखाता है कि सत्ता सेवा का माध्यम होनी चाहिए, न कि स्वार्थ की पूर्ति का। इस ग्रन्थ में न्यायपालिका के स्वतंत्र और निष्पक्ष संचालन पर बल दिया गया है। न्याय में देरी या पक्षपातपूर्ण निर्णय को राज्य के पतन का प्रमुख कारण बताया गया है। वर्तमान में न्यायिक स्वतंत्रता को सुदृढ़ करने की आवश्यकता पहले से अधिक महसूस की जा रही है। राजनीतिरत्नाकर का यह दृष्टिकोण न्याय के क्षेत्र में सुधार की प्रेरणा देता है। इस ग्रन्थ में प्रशासनिक दक्षता और लोकसेवा के लिए कहा गया है कि राजा को योग्य, शिक्षित और कर्मठ मंत्रियों की नियुक्ति करनी चाहिए। भ्रष्ट, अकुशल और पक्षपाती मंत्रियों से राज्य का क्षय होता है। वर्तमान में प्रशासनिक सुधारों की बात हो रही है (जैसे मिशन कर्मयोगी पहल), तो राजनीतिरत्नाकर की प्रशासनिक सूझबूझ अत्यंत प्रासंगिक हो जाती है। राजनीतिरत्नाकर में राज्य के वित्तीय प्रबंधन के लिए भी नीतियाँ दी गई हैं, जैसे कराधान की न्यायसंगतता और अनावश्यक व्यय से बचाव। वर्तमान सन्दर्भ में वित्तीय अनुशासन और पारदर्शिता की आवश्यकता महसूस हो रही है, तो यह नीति मार्गदर्शक बन सकती है। राजनीतिरत्नाकर कूटनीति और युद्ध नीति पर भी प्रकाश डालता है। शत्रु से मित्रता और मित्र से सतर्कता रखने की नीति आज के अंतरराष्ट्रीय सम्बन्धों में भी उपयोगी हो सकती है।

निष्कर्ष:

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के सामने आज जो संकट हैं, जैसे नैतिक पतन, संस्थागत क्षरण और सामाजिक विषमता, इनका समाधान केवल आधुनिक तकनीकी उपायों से नहीं, बल्कि सुदृढ़ नैतिक और सांस्कृतिक बुनियाद से सम्भव है। राजनीतिरत्नाकर एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जो ऐसा दृष्टिकोण प्रदान करता है जो भारतीय राजनीति को अधिक नैतिक, समावेशी और प्रभावी बना सकता है। राजनीतिरत्नाकर नीति, धर्म और व्यावहारिक राजनीति का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करता है और हमें यही सिखाता है कि सत्ता सेवा का माध्यम बने, न कि वर्चस्व का। आधुनिक लोकतंत्र के सन्दर्भ में यदि राजनीतिरत्नाकर की शिक्षाओं को समुचित ढंग से आत्मसात किया जाए, तो यह भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की पुनर्रचना

में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। राजनीतिरत्नाकर का समकालीन राजनीतिक विमर्श में पुनर्पाठ अत्यंत आवश्यक है। यदि इसके सिद्धांतों को सार रूप में ग्रहण किया जाए, तो भारत एक सशक्त, न्यायपूर्ण और समावेशी लोकतंत्र का आदर्श प्रस्तुत कर सकता है। इसलिए, आज जब भारत 21वीं सदी के जटिल राजनीतिक परिदृश्य में आगे बढ़ रहा है, तब राजनीतिरत्नाकर को केवल अतीत का अवशेष न मानकर, भविष्य के निर्माण में एक प्रकाशस्तंभ के रूप में देखना चाहिए। अतः हम कह सकते हैं कि चण्डेश्वर कृत राजनीतिरत्नाकर भारतीय राजनीति और प्रशासनिक दर्शन का एक अमूल्य ग्रन्थ है। यह न केवल ऐतिहासिक महत्व रखता है, बल्कि इसकी शिक्षाएँ आज भी शासन और नीतिनिर्माण में उपयोगी हैं। यह ग्रन्थ भारत की प्राचीन ज्ञान परम्परा का उत्कृष्ट उदाहरण है और इसे उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. घोष, अरविन्द. (1994). *भारतीय संस्कृति के आधार.* प्रकाशन विभाग पाण्डिचेरी-2 पृ.सं. 393 ।
2. जायसवाल, काशीप्रसाद. (1984). *हिन्दू पालिटी.* के मित्र दि इंडियन प्रेस, एलटीडी, इलाहाबाद पृ.सं. 8 ।
3. अलटेकर, प्रो. अनंत सदाशिव. (2005). *प्राचीन भारतीय शासन-पद्धति.* विश्वविद्यालय प्रशासन, वाराणसी पृ.सं. 17 ।
4. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. (1989). *भारतीय राजशास्त्र के प्रणेता.* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ पृ.सं. 668 ।
5. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. पूर्वोक्त पृ.सं. 668 ।
6. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. पूर्वोक्त पृ.सं. 668-669 ।
7. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर (हिन्दी व्याख्या- श्री वाचस्पति गैरोला एंव तारिणीश झा) चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी-1 1970, पृ.स. 5-15 ।
8. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. पूर्वोक्त पृ.सं. 672-681 ।
9. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. पूर्वोक्त पृ.सं. 682-684 ।
10. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 1-15 ।
11. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. पूर्वोक्त पृ.सं. 412-415 ।
12. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. पूर्वोक्त पृ.सं. 431-433 ।
13. पाण्डेय, डॉ. श्यामलाल. पूर्वोक्त पृ.सं. 438-440 ।
14. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 3 ।
15. मजूमदार, बिमनबिहारी. (जनवरी-दिसम्बर, 1962). *पॉलिटिकल थॉट ऑफ चण्डेश्वर (अ फॉरटीन्थ सेंचुरी फिलॉसफर-डिप्लोमेट).* दि इण्डियन जर्नल ऑफ पॉलिटिकल सांइस. 23(1/4). पृ.स. 298।

16. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 19 ।
17. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 28 ।
18. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 33 ।
19. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 36-39 ।
20. 20. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 47-49 । द्विवेदी, पण्डित गिरिजाप्रसाद (सं.). (1917). *मनुस्मृति.* लखनऊ पृ.सं. 218 ।
21. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 53 ।. पाण्डेय, डॉ. उमेश चन्द्र(सं.). (1967). *याज्ञवल्क्यस्मृति.* चौखम्भा संस्कृत सीरीज ऑफिस वाराणसी-1 पृ.स. 152 ।
22. 22. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 61 । द्विवेदी, पण्डित गिरिजाप्रसाद. पूर्वोक्त पृ.सं. 243 ।
23. 23. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 64-70 । द्विवेदी, पण्डित गिरिजाप्रसाद. पूर्वोक्त पृ.सं. 238 ।
24. 24. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 77-80 । द्विवेदी, पण्डित गिरिजाप्रसाद. पूर्वोक्त पृ.सं. 217 ।
25. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 82 ।
26. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 106 ।
27. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 120-122 ।
28. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 127-129 ।
29. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 133-134 ।
30. चण्डेश्वर: राजनीतिरत्नाकर. पूर्वोक्त पृ.सं. 139-140 ।